© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

अभिज्ञानशाकुन्तलम् मे पर्यावरणीय महत्व

पूनम राज
शोधच्छात्रा
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर उत्तर प्रदेश

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक भावना तथा तत्वज्ञान का रूचिर दर्पण है। भारत के ऐतिहासिक धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं राजनैतिक जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या संस्कृत वाङ्मय में समिष्ट है। संस्कृत साहित्य प्राचीनता तथा व्यापकता की दृष्टि से विश्व के समस्त सभ्य साहित्यों में श्रेष्ठतम है।[1]

संस्कृत साहित्य लौकिक तथा अलौकिक भेद से दो प्रकार के है। अलौकिक संस्कृत साहित्य का तात्पर्य वेदों से है तथा लौकिक का अभिप्राय दृश्य तथा श्रव्य काव्य से है। दृश्य तथा श्रव्य काव्य दोनों ही रमणीयता और रसास्वादन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[2]

संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम् 'वेदो' में दृश्य काव्य का उल्लेख मिलता है। दृश्य काव्य को नाट्य, रूपक, रूप आदि वाचक शब्द से भी जाना जाता है। रूपक का प्रमुख प्रकार नाटक है।[3] संस्कृत साहित्य में नाटक को ही कवित्व की सीमा माना गया है। संस्कृत के कवि सौन्दर्य तथा माधुर्य के उपासक होते है। उनका ह्रदय सौम्य भाव में विशेष रमता है। माधुर्य के उत्पादक दृश्यों के ऊपर दृष्टि विशेष रूप से जाती है। वे मानव–दृश्य के भावों के समझने तथा विश्लेषण में जितने कृतकार्य है उतने ही वे बाह्य प्रकृति के भी रहस्यों के परखने तथा उद्घाटन में समर्थ है। बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण संस्कृत साहित्य में प्राचीन वेदो में प्राप्त होता है। संस्कृत में प्रत्येक कवि ने अपने कृतियों मे पर्यावरण के महत्व को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण की ही उपज होता है। प्राणी को जैसा पर्यावरण प्राप्त होगा उसका रहन–सहन तथा उसका स्वभाव वैसा ही होगा।[4] पर्यावरण शब्द अति व्यापक है। संस्कृत में परि + आ + वृ + ल्युट् से पर्यावरण शब्द निष्पन्न हुआ है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है– परि 'चारो ओर' तथा आवरण का अर्थ है 'ढ़का हुआ' होना। इस प्रकार पर्यावरण का सामान्य अर्थ उस भौतिक परिवेश से है जो पृथ्वी के जैव–जगत को घेरे हुए है तथा जिसके प्रभाव से जीवन स्पन्दित होता है। पर्यावरण के अन्तर्गत जैविक–अजैविक तत्व एवं मनुष्य के अन्तप्रक्रियाओं के फलस्वरूप स्थानिक, कालिक रूप से घटित तथा भी आते हैं। पर्यावरण को परिभाषित करते हुए ''हर्सकोविट्स'' ने लिखा है–

''पर्यावरण सम्पूर्ण बाहरी परिस्थितियों और उसका जीवधारियों पर पड़ने वाला प्रभाव है। जो जैव जगत के विकास चक्र का नियामक है।''[5]

इस प्रकार पर्यावरण के अन्तर्गत वे सभी भौतिक व अभौतिक प्राकृतिक एवं मानव निर्मित वस्तुएं सम्मिलित है जो प्राणी को चारों ओर से घेरे हुए होती है और उसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित करती है।

जर्मन विद्वान एच0 फिटिग्स के अनुसार – ''पर्यावरण एक जीव के परिस्थितिकी तत्वों या कारकों का योग है।''[6]

इसी प्रकार अमेरिका के विद्वान आर0एम0 मैकाइवर एवं पेज के अनुसार– ''भौतिक पहलू एवं सामाजिक पहलू के दो प्रमुख भागों मे सम्पूर्ण पर्यावरण को बाँटा जा सकता है।'' सामाजिक पहलू के अन्तर्गत लोकरीतियों, प्रथाओं कानूनों, संस्थाओं, सामाजिक सम्बन्धों, जातीय समूहों, सामाजिक विरासत आदि को सम्मिलित किया गया है। भौतिक या प्राकृतिक पहलू बहुत विस्तृत है इसे दो भांगों मे बांटा गया है– 1. मानव द्वारा असंशोधित एवं 2. मानव द्वारा संशोधित। भौगोलिक या प्राकृतिक पर्यावरण मानव द्वारा अनिर्मित पर्यावरण है। भौगोलिक पर्यावरण मे वे समस्त दशाएं सम्मिलित है जो प्रकृति मनुष्य को प्रदान करती है। भूमि, जल, पहाड़ और मैदान सूर्य–चाँद पौधे और जीव–जन्तु, जलवायु, गुरूत्वाकर्षण, विद्युत, विकिरण, खनिज पदार्थ, समुद्र आदि सभी प्राकृतिक शक्तियां भौगोलिक पर्यावरण का निर्माण करती है।[7]

सी0सी0 पार्क के अनुसार– ''मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण कहा जाता है।''[8]

मानव एक सामाजिक प्राणी है जिसे समाज में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसे पर्यावरण चेतना तथा मानवीय मूल्यों की आवश्यकता होती है। पर्यावरण चेतना का तात्पर्य मनुष्य का पृथ्वी पर विद्यमान अग्नि, जल, मृदा, वायु, जीवधारियों के प्रति चिन्तन बोध एवं जागृति से है। वर्तमान सन्दर्भ में पर्यावरणीय समस्याओं के कारण पर्यावरण–संरक्षण सम्बन्धित ज्ञान जनमानस के लिए आवश्यक है। संस्कृत–साहित्य में आदि कवि वाल्मीकि तथा व्यास कालिदास तथा भवभूति, बाणभट्ट एवं दण्डी आदि ने पाठको के ह्रदय को मोहित करने वाले अपनी मनोरम काव्य में पर्यावरण के महत्व को प्राचीन काल मे ही दर्शाया है। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं निपुण नाटककार है। कालिदास ने अपनी सभी रचनाओं में पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष का सुन्दर एवं मनोहारी निरूपण किया है। उन्होने अपने रूपकों मे पर्यावरण के प्राकृतिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वो के महत्व का वर्णन किया है।

महाकवि कालिदास ने अपने विश्वप्रसिद्ध नाटक ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म एवं हृदयग्राही वर्णन किया है। ''कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्'' इस सूक्त कथन के अनुसार अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में महाकवि कालिदास की काव्य–नाट्य प्रतिभा का चरम उन्मेष सर्वमान्य एवं सहृदय संवेद्य है। न केवल संस्कृत–वाङ्मय में बल्कि समूचे विश्व साहित्य मे कविता कामिनी के विलास कालिदास की यह नाट्यकृति पद–पद पर पर्यावरण–संरक्षण व संवर्धन की अनुपम शिक्षा देती है। जैसा कि कहा भी गया है– ''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शाकुन्तला।।''

इस कालजयी रचना का रसास्वादन तो कवि की भावनुभूतियों की तदनुरूप सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यं´जना से ही हो सकता है। कालिदास ने नाटक के आरम्भ में मंगलाचरण रूप में पर्यावरण के प्राकृतिक के प्रत्येक तत्वो का निरूपण किया है–

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री

ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणाः या स्थिता व्याप्य विश्वम्।

यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[9]

महाकवि कालिदास ने अपने नाटक के नान्दी पद्य में भगवान शिव की आठ मूर्तियों का उल्लेख किया है। ये आठ मूर्तियाँ है, जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथिवी एवं वायु। कालिदास ने अष्टमूर्ति भगवान शिव कीवन्दना करते हुए कहते है जो स्रष्टा की प्रथम रचना जल रूपी मूर्ति है, जो विधिपूर्वक हवन की गयी हवि को ले जाने वाली अग्नि रूपी मूर्ति है, जो हवन करने वाली यजमान रूपी मूर्ति है, जो दो सूर्य एवं चन्द्र रूपी मूर्तियां काल की रचना करती है, शब्दगुण वाली जो आकाश रूपी मूर्ति विश्व को व्याप्त कर स्थित है, जिसे सभी बीजों का उत्पत्ति स्थान कहते हैं वह (पृथ्वी रूपी मूर्ति) और जिसके द्वारा सभी प्राणी प्राणवान् है वह (वायु मूर्ति) उन आठ प्रत्यक्ष मूर्तियो से युक्त भगवानशिव आप लोगों की रक्षा करें। उपर्युक्त पद्य में अष्टरूपधारी शिव की स्तुति के साथ ही प्रकृति के मूल तत्वों का वर्णन किया गया है। विधाता की आदि रचना जल अग्नि, यजमान, सूर्य–चन्द्र, श्रुतिविषयगुणा, आकाश, सर्वबीज प्रकृति धरित्री पृथ्वी प्राणस्वरूप, वायु के रूप में अष्टमूर्ति शिव सम्पूर्ण सृष्टि को धारण करने वाले प्रकृति के सर्जन व संहारक देवता है जो हमारी पर्यावरणीय आभा के प्रतीक है। इस प्रकार इन आठ चेतना–चेतन मूल कारकों की क्रिया से ऋतुएँ, समुद्र, प्रकाश, पर्वत, नदियां, उर्जा आदि भौतिक व रासायनिक तत्व बने है तथा वनस्पतियाँ जन्तु एवं मनुष्यादि जैविक तत्व भी विकसीत हुए है।

नाटक के प्रथम अङ्क मे जब राजा दुष्यन्त सारथि को कण्व आश्रम समीपस्थ होने की बात कहते है तभी राजा पर्यावरण की दृष्टि से सुभग व प्रकृति से आच्छादित लक्षणों से युक्त वक्तव्य देते है–

नीवाराः शुकगर्भ कोटरमुख भष्ट्रास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलभिद् सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगास्तोयधार

यथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः।।[10]

अर्थात् यहाँ आश्रम के सूचक सभी चिन्ह दिखाई दे रहे है पेड़ो के नीचे उन घोंसलो के अग्रभाग से जंगली धान बिखरा पड़ा है। यह धान तोते अपने बच्चो को खिलाने के लिए घोसलों मे ले जाते है। यह नीवार आश्रमों मे ही उत्पन्न होता है। जिसे मुनिजन भी खाते है। मुनियों के द्वारा इङ्गुदी के फलों को तोड़कर तेल निकाला जाता है। इस काम मे लाये गये पत्थर अत्यधिक चिकने हो गये हैं। आश्रम के मृगों को यह विश्वास हो गया है कि हमें कोई नहीं मार सकता। इसलिए वे निर्भय विचरण करते है। और रथ की ध्वनि से भी अविचल रहते है। सरोवरों मे स्नान करके मुनिजन अपने गीले वल्कलों को पहनकर लौटते है इस कारण सरोवर–मार्ग जल रेखाओं से चिन्हित है। इस सब लक्षणों से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि आश्रम निःसदेह पर्यावरण संरक्षण के सुदृढ़ आधार स्तम्भ है। यहाँ पर प्रकृति प्रदत्त सभी वस्तुओं की सुलभता व उनका वैशिष्ट्य स्वयं सिद्ध है। मृगों को निर्भय हरना, इंगुदी जैसी औषधि का प्रयोग व प्रकृति व प्रदूषण निवारण का अनुपमेय संदेश देता है।

अनसूया शाकुन्तला से कहती है सखी शाकुन्तला। मैं समझती हूँ कि पिता काश्यप (कण्व) को ये आश्रम के पौधे तुमसें भी अधिक प्रिय है, जिससे कि चमेली (नवमालिका) के पुष्प के समान सुकोमल भी तुम्हें इन पौधों के आलवाल (क्यारियाँ) भरने के लिए नियुक्त किया गया है।[11] कवि कालिदास प्रकृति के सफल आराधक थे। इसलिए तो भला अनसूया के माध्यम से वृक्षों को सर्वोपरि महत्ता दी है। शाकुन्तला अनसूया से कहती है न केवलं तात नियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु। अर्थात् पिता की आज्ञा ही नही, मेरा भी इन पौधों पर सहोदर जैसा स्नेह है। इस प्रकार शकुन्तला का वृक्षों पर सहोदर जैसा प्रेम आधुनिक–युग की युवतियों को भी वृक्षों के प्रति सहोदर भाव रखने का अमिट संदेश दिया है। पर्यावरण को सन्तुलन बनाए रखने के लिए वृक्षारोपण ही नहीं बल्कि उनका पोषण भी आवश्यक है।

तृतीय अंक मे सन्ध्या–काल के समय यज्ञ करने का द्रष्टान्त मिलता है अतः यह पक्ष स्पष्ट है कि यह प्रदूषण निवारक तो है ही साथ साथ ऋषिगणों के लिए आवश्यक कर्म–विधान भी। यज्ञ के कारण

सन्ध्या के समय यज्ञस्थल के आसपास का वातावरण परिशुद्ध हो जाता है। यज्ञकर्म सांस्कृतिक पर्यावरण का प्रतीक है। प्रकृति मे यज्ञों के धूम से एक विशेष प्रकार का वातावरण आकाश मण्डल में बनता है, उससे पृथ्वी पर वृष्टि होती है तथा उससे धन–धान्य की समृद्धि के साथ पर्यावरण सुरक्षित रहता है।[12]

नाटक के चतुर्थ अंक मे शकुन्तला की विदाई के समय वन वृक्षो द्वारा आभूषण प्रदान किये जाते है। अतः वनस्पति भर्तृगृह जा रही शकुन्तला के लिए वस्त्राभरण दे रही है, लाक्षारस और मांगल्य तथा क्षौमवस्त्रादि दे रही है।

क्षौमं केनचिदिन्दु पाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम्

निष्ठयूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।

अन्येभ्यो वन देवता करतलैरापर्व भागोत्थितै

र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद भेद प्रतिद्वन्द्विभिः।।[13]

अर्थात् किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरो को रंगने के योग्य, लाक्षारस (महावर) प्रकट किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए सुन्दर किसलयों (कोपलों) की प्रतिस्पर्धा करने वाले, वन–देवता के करतलों से आभूषण दिए। कवि कालिदास का आशय है कि वनदेवताओं के हाथों से आभूषणों की प्राप्ति से शकुन्तला के अखण्ड सौभाग्य का ध्वन्यांकर होता है। इसमें महर्षि कण्व के तपश्चरण के प्रभाव से वृक्षों मे चेतनत्व तथा दानक्षमता की विशेषता प्रकट की गई है। शकुन्तला के लिए कहा गया है कि वृक्षादिकों के अनुग्रह से सूचित हो रहा है कि तुम पति के घर मे राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी। महर्षि कण्व अपनी लाडली बेटी की विदा करते हुए कहते है कि जो तुम्हें बिना जल पिलाए स्वयं जल नहीं पीती थी, तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण जो अलंकारों की प्रेमी होने पर भी (तुम्हारे) नये पत्ते नहीं तोड़ती थी। तुम्हारे पुष्पोद्गम् के समय जिसका उत्सव होता था, वह यह शकुन्तला (अब) पतिगृह को जा रही है, तुम सब अपनी स्वीकृति दो।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषुया

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमयें यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[14]

उपर्युक्त पद्य के माध्यम से कविवर कालिदास ने तपोवन वर्धिता बाला की वृक्षादिकों पर सहोदर–स्नेह की मार्मिक झाँकी उपस्थित की है। इसमें प्रकृति और मानव के पारस्परिक स्नेह सम्बन्धों पर सुन्दर वर्णन किया है। इसमें मानवीय प्रकृति की कोमलतम अभिव्यंजना का निदर्शन है।

इस पद्य के माध्यम से महाकवि कालिदास ने वृक्षों के प्रति अमिट प्रेम की भावाभिव्यक्ति द्वारा सूमचे विश्व के जनसमुदाय को जल सिंचन करने, वृक्षो को ही नहीं बल्कि उनकीनई कोपलों व पत्तों को व फल–फूलो को अनावश्यक रूप से न तोड़ने की गूढ़ बात कही है। वर्तमान समय में लोग अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर वनो की अंधाधुध कटाई, स्वार्थ को सर्वोपरि मानते हुए परार्थ भाव को गौण कर फल–फूलों, वनस्पतियों व वृक्षों का अनावश्यक रूप मे कर्तन कर पर्यावरण प्रदूषण को सरे आम न्यौता दिया जा रहा है। जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। अतः हमे महाकवि कालिदास के भावों को आत्मसात् कर प्राणिमात्र के हितैषी वृक्ष बन्धुओं को देवता रूप में मानकर सदैव उनका सिंचन परिरक्षण व पक्षधर होना चाहिए। इससे हमारे देश के पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राणिमात्र मे होने वाले नई–नई बीमारियों पर भी लगाम लग सकती है। इस प्रकार कण्व बेटी को विदा करते हुए वृक्षो से अनुज्ञा ले रहे है। और वनवास बन्धु द्रुम मानों कोकिल के मीठे बोलों के बहाने से जाने की अनुमति दे रहे है। आशय यह है कि वन के वृक्ष स्वयं बोल नहीं सकते इसलिए उनकी ओर से कोयल ने कहा है। कोयल की ध्वनि शुभ शकुन की भी सूचक है। पर्यावरण–सौन्दर्य में कोयल जैसी मधुर भाषिणी पक्षियों का बहुत बड़ा योगदान होता है आधुनिक काल मे बहुत सारे पक्षी विलुप्त हो रहे है अतः हमे पक्षियों के संरक्षण में अपना भरपूर सहयोग देना चाहिए। चतुर्थ अंक मे वनदेवता आशीर्वचन देते हुए शकुन्तला को 'शिवास्ते पन्थानः सन्तु' का गौरवमयी उपदेश दे रहे है–

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि

श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।

भूताय् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः

शान्तानुकुलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।[15]

यहाँ पर वनदेवताओं की आकाशवाणी है। कमलिनियों से हरे भरे सरोवरों से मार्ग का मध्यभाग मनोहर हो। घनी छाया वाले वृक्षों से सूर्य की किरणो का ताप दूर हो। इसका मार्ग कमलो के पराग से कोमल धूलि–युक्त, शान्त और अनुकुल वायु से युक्त तथा कल्याणकारी हो। वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे मनुष्य अपने स्वार्थो की पूर्ति करने तथा बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए

वन–सम्पदा का तेजी से दोहन करने में जुटा हुआ है। जिससे पर्यावरण में प्राकृतिक असंतुलन तेजी से बढ़ रहा है। इसके कुछ उदाहरण हम आए दिन देखते है जैसे–वनों के कटने से मरूस्थल का फैलाव वर्षा का न होना अथवा जल के अनियंत्रित बहाव से बाढ़ आना, उपजाऊ मिट्टी का बह जाना, पक्षियों तथा वन्य–जन्तुओं की निरन्तर कमी होना एवं इनी कुछ जातियों का विलुप्त होना तथा भूकम्प आदि का आगमन प्रमुख घटक है।

शकुन्तला के आश्रम छोड़कर जाने के असहा दुःख के कारण प्रकृति की प्रत्येक वस्तुएं मानों उदास सी नजर आती है। शकुन्तला के वियोग मे हरिणियों न कुशाओं को खाना छोड़ दिया है मोरों ने नाचना बन्द कर दिया है और लताएँ अपने पीले पत्ते के रूप में मानों आँसू बहा रही है।

पंचम अङ्क में राजा दुष्यन्त के प्रकृति प्रेम तथा पर्यावरण संरक्षण के सूक्ष्म निरीक्षण का भाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। राजा दुष्यन्त को जब तपस्वी ऋषियों के आगमन का पता चलता है तब वह कहता है क्या उच्च कोटि के तपस्वी व्रती ऋषियों की तपस्या विघ्नों के कारण प्रदूषित हो गई है। अथवा तपोवन मे विचरण करने वाले प्राणियों पर किसी ने अनुचित चेष्टा की है। या मेरे किन्ही कुकृत्यों से लताओं मे फल–फूल आदि आना रूक गया है इस प्रकार बहुत सी शंकाओं से व्याप्त मेरा मन कुछ निश्चय न कर सकने से व्याकुल हो रहा है। महाकवि कालिदास ने शार्ङ्गरव के माध्यम से वृक्षों, बादलों व नदियों की तरह सदैव मानव–मात्र को परोपकारी बनने का संदेश दिया है। अर्थात वृक्ष फल स्वयं के लिए नहीं बल्कि मानव समाज के लिए देते है। बादल, जल प्राणी मात्र के कल्याण के लिए ही देते है। अतः जनसमुदाय को चाहिए कि वह हमारे पर्यावरण से शिक्षा प्राप्त कर परोपकार प्रवृत्ति अपनाएं–

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै

नर्वाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः

स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।[16]

इसका आशय यह है कि वृक्ष फलों के आने पर नम्र हो जाते है। बादल नये जल से पूर्ण होने पर बहुत नीचे लटक जाते है। सज्जन पुरूष समृद्धि पाकर सुशील हो जाते है यह परोपकारियों का स्वभाव ही है। यहाँ पर प्रकृति के माध्यम से लोक कल्याण की भावना का महत्वपूर्ण संदेश दिया गया है। इस प्रकार राजा दुष्यन्त के राजमहल मे आई शकुन्तला के शरीर एवं सौन्दर्य को देखकर राजा दुष्यन्त कहता है जो स्त्री तपस्वियों के बीच खड़ी है वह वैसी ही दिखाई दे रही है जैसे पीले पत्तों के बीच निकला हुआ नया पल्लव हो। उसके विषय में राजा की जिज्ञासा होती है कि यह कौन है। राजा दुष्यन्त शाप के कारण शकुन्तला को

भूल गया है तथा उसे एक पराई स्त्री समझकर उसे देखना उचित नहीं समझता है यहाँ पर दुष्यन्त के प्रजापालक तथा धैर्यशीलता के गुणो को कालिदास ने स्पष्ट रूप से वर्णित किया है। कण्व के शिष्य राजा के धर्मक्रिया की रक्षा के कार्य पर सन्तोष व्यक्त करते है। ऋषिगण कहते है– तुम्हारे सज्जनों के रक्षक होने पर धर्मकार्यों में विघ्न कहाँ से हो सकता है? उष्ण किरणों वाले सूर्य के तपते रहने पर उस समय अन्धकार का लेश भी कहाँ से सम्भव हो सकता है। शार्ङ्गरव राजा से यह कहना चाहता है कि विवाहित स्त्री का अपने पिता के कुल में रहना उचित नहीं है अतः इसका अपने पति अर्थात् आपके पास ही रहना लोकव्यवहार से समीचीन है। यहाँ पर राजा का शकुन्तला के त्याग करने पर शार्ङ्गरव कहता है–

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रया

जनोऽन्यथा भर्तृमती विशङ्कते।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते

प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।।[17]

अर्थात् लोग एकमात्र अपने पिता के ही घर में निवास करने वाली सधवा के सच्चरित्र होने पर भी अन्यथा आशंका करते है, इस कारण युवती स्त्री का उसके पितृकुल के सम्बन्धी पति के समीप ही निवास करना पसन्द करते है। चाहें वह उसके लिए प्रिया हो या अप्रिया।

अभिज्ञानशाकुन्तल के षष्ठ वे अंक में महाकवि कालिदास ने दासी के माध्यम से बसन्त का मनोहारी वर्णन किया है। दासी कहती है कि वसन्त मास का जीवन सर्वस्व अर्थात् अन्य वासन्तिक पुष्पों के होते हुए भी सर्वोत्तम है। जैसा कि दासी कहती है–

आताम्रहरितपाण्डुर जीवित सत्यं वसन्तमासस्य।

दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि।।[18]

परभृतिका नाम की दासी आम्रमंजरी को ध्यान से देखकर कहती है। कुछ लाल, हरे और श्वेत रंगो से मिले हुए हे बसन्त मास के सत्य ही जीवन–स्वरूप हे आम्रमुकुल। तुम दिखायी पड़े हो। हे वसन्त ऋतु के मंगल! तुम्हें प्रसन्न करती हुई प्रणाम कर रही हूँ। यहाँ पर परभृतिका कोयल के समान आम्रमंजरी को देखकर अकेली आनन्दित हो रही है उसी से बातें कर रही है। दूसरी दासी मधुरिका भौरी के समान चंचल है

क्योंकि वही आम्रमंजरी तोड़ने की चंचलता प्रदर्शित करती है तथा आम्रमंजरी को तोड़कर कामदेव को अर्पित करती है।

राजा दुष्यन्त विदूषक को एक चित्र में विभिन्न प्राकृति–सौन्दर्य को उकेरने का आदेश देता है। राजा चित्र प्रसङ्ग को लक्ष्य कर कहता है कि इसमें रेतीले तट पर हंस–मिथुन से संयुक्त मालिनी नदीं को चित्रित करना है उस मालिनी नदी के दोनों ओर हिमालय की तलहटी का चित्रण करना है जिसमें कि मृग बैठे हो, वल्कलवस्त्र जिसकी शाखाओं पर लटके हुए है ऐसे वृक्ष के नीचे कृष्णसार मृग के सींग पर अपने बायें नेत्र की खुजलाती हुई मृगी को चित्रित करना है। यहाँ पर कालिदास ने मालिनी नदी के पास हंस–जोड़ो का रहना, हिमालय की तलहटी मे मृगों का वास तथा इसी प्रकार मालिनी नदीं का पर्वतराज हिमालय के माध्यम से प्राचीनकाल की तरह ही अब भी पर्यावरण–संरक्षण का शाश्वत संदेश देते हुए प्राकृतिक सौन्दर्य को प्रतिबिम्बत किया है–

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी

पादास्तामभितों निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्नि र्मातुमिच्छाम्यधः

श्रृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयंन कण्डूयमानां मृगीम्।।[19]

इस पद्य में राजा आश्रम के उस प्राकृतिक परिवेश का वर्णन करता है, जिसका चित्रण उसे शकुन्तला के चित्र के साथ करना है। यहाँ पर मालिनी नदी के तट, हंसों तथा मृगों की क्रियाओं का और हिमालय के प्रकृतिक सुषमा का वर्णन किया गया है। इस अंक में राजा दुष्यन्त के प्रजापालक कर्तव्य का और लोकव्यवहार का मनोरम स्वरूप का वर्णित किया गया है। राजा के विवकेशीलता तथा पराक्रम की प्रशंसा इन्द्र का सारथि मातलि करता है। वह कहता है इन्द्र के द्वारा असुर तुम्हारे बाण का लक्ष्य बनाये गयें। आप उन असुरों का विनाश अपने इस धनुष से कीजिए। जैसे कि सज्जनों के अपने मित्रो के ऊपर प्रसन्नता से सौम्य दृष्टि पड़ती है कठोर बाण नहीं। इस पद्य सामाजिक पर्यावरण के सभी तथ्य व्यक्त हुआ है।

सप्तम अंक मे राष्ट्रकवि कालिदास ने अपराजिता आयुर्वेदीय औषधि का जातकर्म, नेत्र रोग निदान, विषनाशक, कोढ़, पित्तरोग व सूजन को नष्ट करने वाली ऐसी लाभकारी औषधि का उल्लेखकर वनस्पति–जगत की महत्ता को सिद्ध किया। इस में पर्यावरण के प्रत्येक पक्ष के महत्व बताया गया है।

इसी प्रकार दुष्यन्त मेघ मार्ग का वर्णन करते हुए पर्यावरण भाव की और भी प्रबल करते हुए कहते हैं कि आपका रथ जल से भरे हुए मेघों के ऊपर अर्थात् मेघमार्ग में चल रहा है। क्योंकि आपके रथ के पहियों के घुरे गीले हो गये हैं, पहियों के अरों के छिन्द्रो से चातक पक्षी इधर–उधर निकल रहे है और बिजली के तेज चमकने से घोड़े अनुरंजित हो रहे है– मेघों का होना व बिजली का चमकना पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटक है इसलिए तो कालिदास ने इस प्रकार की सर्जना ग्रथित की है।[20]

राजा दुष्यन्त महर्षियों की तपस्या से विस्मत होता है। वह मातलि से कहता है–

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने

तोये कांचनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया।

ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो

यत्कांक्षन्ति तपोभिरन्य मन यस्तस्मिस्तपस्यन्त्यमी।।[21]

अर्थात् इस तपोवन से अभीष्ट फल देने वाला कल्पवृक्ष विद्यमान है तथापि मारीच आश्रम के तपस्वी उन के स्वादिष्ट फल न लेकर केवल वायुभक्षण से अपने प्राणों को धारण करने का अभ्यास करते है। स्वर्ण कमलों के पराग से पीले बने जल में धार्मिक स्नान की क्रिया की जा रही है। आशय यह है कि मुनिजन 'जल अमृत है' के भाव से पूर्णतया परिचित थे। यहाँ पर रत्न की शिलाओं पर बैठकर ध्यान लगाया जाता था तथा देवताओं की स्त्रियों के समीप संयम का अभ्यास किया जा रहा था। दूसरे मुनिजन तपस्याओं द्वारा जिसकी कामना करते है उसी में रहकर ये तपस्या कर रहे है।

आश्रम के सभी जीवों का बलपूर्वक दमन करने के कारण दुष्यन्त पुत्र का नाम 'सर्वदमन' जो कि पर्यावरण विनाशक का प्रतीक है, किन्तु भविष्य में वही सर्वदमन जीवों का समुचित भरण–पोषण करने से 'भरत' नाम से प्रसिद्ध हो गया। यहाँ भरत पर्यावरण रक्षक के रूप में अवतरित हुए है। अतः वर्तमान सन्दर्भो में भी मानव को भरत के समान ही वनो, वृक्ष–लता, पशु–पक्षियों व वन्यजीवों की रक्षा का संकल्प लेना चाहिए। महाकवि कालिदास ने अपने इस अमर कृति में जनमानस को पर्यावरण संरक्षण का अनुपम संदेश दिया है।

सन्दर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय

2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी
3. दशरूपक, आचार्य धनन्जय
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 उमाशङ्कर शर्मा
5. जनसंख्या एवं पर्यावरणीय शिक्षा, ओमप्रकाश श्रीवास्तव
6. पर्यावरण और मानव मूल्यों के लिए शिक्षा, बी0एल0 शर्मा
7. भारत में सामाजिक आन्दोलन, प्रो0 एम0एल0 गुप्ता
8. पर्यावरण शिक्षा, डॉ0 आर0ए0 शर्मा
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, 1/1 श्लोक
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, 1/13 श्लोक
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उमेशचन्द्र पाण्डेय, 2 अंक
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 3/24 श्लोक
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/5 श्लोक
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/9 श्लोक
15. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/11 श्लोक
16. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/12 श्लोक
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/17 श्लोक
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6/3 श्लोक
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6/17 श्लोक
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 7/7 श्लोक
21. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ0 वेदप्रकाश शास्त्री, 7/12 श्लोक